परिस्थिति और निर्मिति : मोहन से महात्मा

राजीव रंजन गिरि

संपर्क- 7011945619

गांधी जी की दक्षिण अफ़्रीका की यात्रा एक वैसे नौजवान की यात्रा थी जो अपने सुनहले भविष्य-निर्माण के लिए रोजगार के सिलसिले में मादरे वतन से दूर जाता है। 1893 में करीब चौबीस साल के बैरिस्टर मोहनदास के ख़्वाब में भी दूर तक यह ख़्याल नहीं था कि जीवन इस तरह होने वाला है। हालाँकि दक्षिण अफ़्रीका की यात्रा से पहले इंग्लैण्ड प्रवास के दौरान मोहनदास की जीवन-दृष्टि थोड़ी अलहदा थी। किशोरावस्था में यह अलहदापन दिखने लगा था। बावजूद इसके जिस दिशा में आगामी जीवन गया, उसका अंदेशा स्वयं मोहनदास को भी नहीं था। सेंटपिटर्सबर्ग में मोहनदास के जीवन में जो घटित हुआ, वह इस नौजवान बैरिस्टर के लिए भले ही नया अनुभव था पर उस देश-काल में पहली घटना नहीं थी। यही वजह है कि मोहनदास के परिचित प्रवासियों को हैरत नहीं हुई। उन लोगों ने दोस्ताना सुझाव दिया कि इसे भूलने में ही भलाई है। पर मोहनदास भिन्न मिट्टी के बने थे, यहाँ से स्पष्ट होने लगा था। इस आलेख में बैरिस्टर मोहनदास के महात्मा बनने की प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है।

दक्षिण अफ़्रीका प्रवास के दौरान मोहनदास करमचन्द गांधी ने रंगभेद का दंश भोगा। महसूस भी किया और पहचाना कि यह दंश, महारोग का एक लक्षण मात्र है। उसका सहज परिणाम। असल महारोग है -रंगद्वेष। इस महारोग की शिनाख़्त के पश्चात गांधी ने मन-ही-मन सोचा कि मेरा कर्तव्य क्या है? मुझे यहाँ रहकर अपने हक़ और हकूक के लिए संघर्ष करना चाहिए? या अपने मुल्क लौट जाना चाहिए? अथवा अपमान का दंश सहकर भी अपना काम (मुकदमा) खत्म करके, अपने देश वापस जाना चाहिए? गांधी ने संघर्ष की राह चुनी। इस निर्णय के बाद, वे सार्वजनिक जीवन की तरफ़ कदम-दर-कदम बढ़ने लगे। लोगों से जुड़ते गए। लोगों को जोड़ते गए। संस्था बनायी। संगठन बनाया। 'इंडियन ओपीनियन' निकाला। दोहरी चुनौती थी गांधी के सामने। एक, रंगभेदी निज़ाम की नीतियों के खिलाफ़ संघर्ष। इससे संबंधित एक चुनौती और भी थी। रंगभेद के मारफ़त, जिन्हें विशेषाधिकार हासिल था, उनके नजरिए से संघर्ष। दो, दक्षिण अफ़्रीका में रहने वाले भारतीय जो रोज-ब-रोज रंगभेद का दंश झेलते हुए इसे वैध, सहज एवं स्वाभाविक मान चुके थे, उनकी मानसिक बुनावट से संघर्ष। इन्हें रंगभेद की अमानवीयता का अहसास कराना, यह समझाना कि रंगभेद की मुख़ालफ़त में एकजुट होकर संघर्ष करना हमारा फ़र्ज है, कि इससे निजात पाया जा सकता है। संघर्ष के पक्ष में लोगों को बनाये रखने और संघर्ष को अपने नजरिए के हिसाब से जारी रखने के

साथ-साथ जिससे संघर्ष कर रहे थे, उसे अपना पक्ष समझाने के लिए गांधी को भाषण करने और लेख लिखने पड़ते थे। नतीजतन, दक्षिण अफ्रीका में हुए संघर्ष में, गांधीजी केन्द्रीय शख़्सियत के रूप में उभरे। वकालत का पेशा छोड़ सार्वजनिक जीवन में गांधी ने जो कदम बढाए, आगे बढ़ते गए।

अपनी सोच को अमली रूप देने के लिए, गांधीजी ने कई ' प्रयोग ' किए। जो सोचा, अपने विचार जाहिर किए, उस मार्ग पर पहला कदम खुद बढ़ाया। अपने मूल दृष्टिकोण- सत्य और अहिंसा का पक्ष अनेक मौकों पर स्पष्ट किया। इसकी अहमियत पर अनेक दफ़े प्रकाश डाला। गांधी की लड़ाई जिनके पक्ष में थी, उनसे संघर्ष के रास्ते और मकसद के बाबत वाद-संवाद किया। उन्हें संकीर्ण नहीं होने देने के लिए बार-बार चेताया। उनसे भी खुले व उदार दिल से संवाद किया, जिनके विरुद्ध लड़ रहे थे। उन्हें समझाने का भरपूर प्रयास किया कि वे एक नई सभ्यता की रचना के लिए संघर्ष कर रहे हैं। कोई भी उनका दुश्मन नहीं है।

अपने विचार को जाहिर करने के लिए गांधी ने 'हिन्द स्वराज' रचा। इस किताब में हिन्दुस्तान की वास्तविक दशा बताई और अपने विचार की दिशा भी दिखाई। यह किताब, गांधी की चेतना और उनके चिन्तन की बुनियाद है और बुलन्दी भी।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान औपनिवेशिक दासता से जूझते हुए, जो वैचारिक सरणियाँ सामने आई , उसमें गांधी कहाँ खड़े थे? तत्कालीन नेताओं, बुद्धिधर्मियों, दार्शनिकों के बीच गांधी का रिश्ता किस वैचारिक जमीन से था ? समझने की सहूलियत के लिए, शिक्षा प्राप्ति के आधार पर, अगर कोटि विभाजन करें तो पहली कोटि बनेगी उनकी, जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा - जिसे हम ' आधुनिक शिक्षा ' के नाम से भी जानते हैं- पाई थी। दूसरी कोटि उन लोगों की, जो इससे वंचित थे। अलबत्ता इन दोनों कोटियों के अन्दर भिन्न -भिन्न वैचारिक सरणियाँ समाहित थीं। लिहाजा ये दोनों कोटियाँ भी निर्दोष और एकरेखीय नहीं हैं।

इन कोटियों के अन्दर मौजूद आवाजों की बहुलता और मुख्तलिफ़ प्रवृत्ति, दोनों कोटियों को, जटिलता प्रदान करती हैं। आशय यह कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों की कोटि के भीतर मौजूद बहुस्वर कभी एक दूसरे को काटते हैं तो कभी एक दूसरे में समाते दिखते हैं। यही हाल दूसरी कोटि - अंग्रेजी शिक्षा से वंचित का हैं, इसमें भी मौजूद विविध स्वर कभी एक दूसरे से संगति करते हैं, तो कभी सामना भी। इस संदर्भ में, गांधी की मिसाल सामने रखने पर, पता चलता है कि वे पहली कोटि में आते हैं। परंतु अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त तत्कालीन बुद्धिधर्मियों, विचारकों , नेताओं , दार्शनिकों से निहायत अलहदा सोचते हैं। गांधी के शब्द और कर्म जो विचार-दर्शन प्रस्तावित व स्थापित करते हैं , वे इस कोटि के अन्य लोगों की सोच में नहीं समाते। लिहाजा, इस कोटि से सम्बन्ध होने के बावजूद गांधी इसका अतिक्रमण करते हैं।

'हिन्द स्वराज' की रचना के बाद से साफ़ होने लगा था कि गांधी की शख्सियत के प्रति अभिभूत सरीखा भाव रखने वाले, उनके वरिष्ठ और कनिष्ठ पीढ़ी के आधुनिक शिक्षा में दीक्षितों ने, इनकी अवधारणा की अहमियत नहीं समझा था। गांधी के 'राजनैतिक गुरु ' गोपालकृष्ण गोखले ने उम्मीद जाहिर की थी कि हिन्दुस्तान में कुछेक साल रहने के बाद, गांधी खुद ही इसमें निहित धारणाओं को ख़ारिज कर देंगे। गोखले की उम्मीद के विपरीत, गांधी का विश्वास ' हिन्द स्वराज ' पर दृढ़तापूर्वक बरकरार रहा। गोखले की मानिंद दूसरे लोगों ने भी, गांधी की अवधारणाओं पर, इसी से मिलता- जुलता मत इज़हार किया था। इन लोगों द्वारा प्रयुक्त शब्दों मे भले ही हेर-फ़ेर हो, परंतु उससे अभिव्यक्त आवाज की अर्थवत्ता समान -सी थी।

सवाल उठता है कि गांधी के व्यक्तित्व को असाधारण मानवीय मौजूदगी मानने वाले क्यों नहीं समझ पा रहे थे, इनके शब्द और कर्म के जरिए अभिव्यक्त होते चिन्तन-दर्शन। आशीष नन्दी के अध्ययन से इसका जवाब मिलता है। नन्दी ने बताया है कि भारतीय जमीन पर औपनिवेशिक असर की मुखालफ़त के, ऊपरी तौर पर सीधे और सरल प्रतीत होने वाले, तौर-तरीकों के अंदरूनी पहलू पेचीदगियों से लबरेज था। उस दौर में, भारतीय समाज में मौजूद परंपरा प्रदत्त जड़ता और औपनिवेशिक जकड़बंदी से संघर्ष करना फिर भी आसान था; बनिस्बत उन औपनिवेशिक मूल्यों के जो, इस संघर्ष के दौरान ही अंत:सलिला की तरह, हमारे भीतर अपनी पैठ बना रहे थे।

सिक्के का एक पहलू था भारतीय मानस का भारतीय पारंपरिक जड़ताओं और औपनिवेशिक जकड़नों से, सकर्मक रूप से जूझना;और दूसरा पहलू था कि इस संघर्ष के साथ ही वह औपनिवेशिक मूल्यों को आत्मसात करता जा रहा था। भारतीय मानस में उपनिवेशवादी मूल्यों के पैठ बनाने और स्वीकृति पाने वाली प्रक्रिया से संघर्ष बेहद मुश्किल उपक्रम था। उपनिवेशवादी मूल्य, आधुनिक शिक्षा, आधुनिकता और इससे उत्पन्न विभिन्न विचार, इस दिशा में होने वाले हस्तक्षेप भी। टैगोर भौतिक क्षेत्र और आध्यात्मिक क्षेत्र को एक-दूसरे से निहायत अलहदा रखना चाहते हैं। इसलिए यह प्रस्तावित करते है कि भौतिक मामले में हस्तक्षेप के बावजूद आध्यात्मिक क्षेत्र को स्वायत्त रखा जा सकता है और ऐसा भारत के लिए जरूरी है।

गांधी के मुताबिक आधुनिकता की समूची संकल्पना मानव-विरोधी है। गांधी भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र को एक-दूसरे से काटकर नहीं देखते। आधुनिकता की संकल्पना जिस मनुष्य का निर्माण करती है, उसमें स्वायत्त अध्यात्म के लिए जगह नहीं। 'संपूर्ण मनुष्य' की रचना के लिए भौतिक विकास के साथ ही आध्यात्मिक उन्नति भी आवश्यक है। सवाल यह है कि आधुनिकता जनित भौतिक विकास जिस भू-राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक वातावरण का निर्माण करता है, क्या उसमें स्वायत्त अध्यात्म के लिए जगह रहती है! कहना होगा कि उस वातावरण में अध्यात्म स्वायत्त नहीं रह सकता, जैसा टैगोर मानते हैं।

भारतीय-स्वाधीनता आंदोलन के दौरान गांधी महज देश की आजादी के लिए प्राण-पण से नहीं जुड़े थे, अपितु इसके साथ ही अपने आदर्श के अनुकूल लोगों की मानसिक बुनावट रचने का भी प्रयास कर रहे थे। गांधी प्रयासरत थे, एक ऐसे संपूर्ण-मनुष्य की रचना में जो भौतिक और आध्यात्मिक रूप से विकसित हो। ऐसे मनुष्यों से ही एक नयी सभ्यता की संरचना निर्मित हो सकती थी। आध्यात्मिक रूप से श्रेष्ठ मनुष्य की रचना, गांधी के मुताबिक आधुनिक-सभ्यता में मुमकिन नहीं। इसलिए गांधी ने आधुनिक सभ्यता के बरअक्स हर पहलू के बारे में सोचा और चिंतन इज़हार किया। बड़े-बड़े कल-कारखानों के समानांतर छोटे-छोटे उद्योग-धंधे और नगर केंद्रित विकास के बजाय गाँव को केंद्र में रखकर विकेन्द्रित विकास के ढांचा का प्रस्ताव, इसी मकसद का परिणाम था।

गांधी ने अपने मत के पक्ष में वाद-विवाद-संवाद किया, शत्रुता नहीं की। भारतीय-स्वाधीनता संग्राम में गांधी ने जितने कदम उठाए, अपनी दार्शनिक अवधारणा को पूर्णता में पाने के प्रयोग-सरीखे थे। इसीलिए गांधी, जहाँ जरूरी लगा, अपना मत-परिवर्तन करने से घबराए नहीं। उनका चिंतन एक जगह ठहरा हुआ नहीं, कदम-दर-कदम बढ़ता गया है; इस शर्त पर कि उनके आदर्शों पर आधारित नई मानवीय सभ्यता की रचना हो सके।

गांधी की अगुआई में भारतीय-स्वाधीनता आंदोलन की प्रकृति और संस्कृति बदली। गांधी ने आज़ादी की लड़ाई से लोगों को जोड़ा। आंदोलन का नेतृत्व भी लोगो से जुड़ा। अपने चिंतन -दर्शन को वैचारिक और संगठनात्मक स्तर पर लागू करने के लिए, स्वराज प्राप्ति के लिए, गांधी ने गांव को केंद्रीय इकाई बनाया। गांधी के शब्द और कर्म में 'स्वराज' का खास स्थान है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान गांधी स्वतंत्रता के बजाय स्वराज प्राप्ति की बात करते थे। 'स्वतंत्रता' शब्द के स्थान 'स्वराज' शब्द-प्रयोग सिर्फ शब्द-चयन का मामला नहीं था। 'स्वराज' मे निहित है, गांधी की चेतना, चिंता, चिंतन और ख़्वाहिश का निचोड़। यह गांधी का वैचारिक-दार्शनिक प्रत्यय है । गांधी ने कई मौकों पर 'स्वराज' को व्याख्यायित और परिभाषित किया है। अपने बीज-ग्रंथ 'हिन्द-स्वराज' के चौथे अध्याय-'स्वराज क्या है'-के आखिर में , गांधी (संपादक) कहते हैं "स्वराज को समझना आपको जितना आसान लगता हैं, उतना ही मुझे मुश्किल लगता है। इसलिए फिलहाल मैं आपको इतना ही समझाने की कोशिश करूँगा कि जिसे आप स्वराज कहते हैं, वह सचमुच स्वराज नहीं है।"

'हिन्द स्वराज' की भूमिका में, इस किताब के बारे मे बताते हुए, गांधी ने लिखा है कि "मैं पाठको को एक चेतावनी देना चाहता हूँ। वे ऐसा न मान लें कि इस किताब में जिस स्वराज की तस्वीर मैंने खड़ी की है, वैसा स्वराज कायम करने के लिए आज मेरी कोशिशें चल रही हैं। मैं जनता हूँ कि अभी हिंदुस्तान उसके लिए तैयार नहीं हैं। ऐसा कहने में शायद ढिठाई का भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का विश्वास है कि इसमें जिस स्वराज की तस्वीरें मैंने खींची है, वैसा स्वराज पाने की मेरी निजी कोशिश जरूर चल रही है।"

'हिन्द स्वराज' में 'पाठक' का पक्ष सुनकर, गांधी (संपादक) ने कहा "इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अंग्रेजी राज्य तो चाहिए पर अंग्रेज (शासक) नहीं चाहिए। आप बाघ का स्वभाव तो चाहते हैं, लेकिन बाघ नहीं चाहते। मतलब यह हुआ कि आप हिन्दुस्तान को अंग्रेज बनाना चाहते हैं और हिंदुस्तान जब अंग्रेज़ बन जाएगा तब वह हिंदुस्तान नहीं कहा जाएगा, लेकिन सच्चा इंग्लिस्तान कहा जाएगा। यह मेरी कल्पना का स्वराज नहीं है।"

'स्वराज' के संदर्भ में गांधी ने उपरोक्त तीन उद्धरणों में जो विचार इज़हार किया है, उसके आधार पर, गांधी की स्वराज संबंधी कल्पना के बारे में अन्दाजा लगाया जा सकता है। दो उद्धरणों में, इन्होंने साफ़ किया है कि 'पाठक' जिसे स्वराज समझते हैं, वास्तव में वह स्वराज है ही नहीं। गांधी तो यहाँ तक कहते हैं कि वे निजी स्तर पर जिस स्वराज को पाने की कोशिश कर रहे हैं, उसके किए फ़िलहाल हिंदुस्तान तैयार नहीं है।

इस संदर्भ में, 'यंग इंडिया' में छपा गांधी का एक लेख काबिलेगौर है – स्वतंत्रता बनाम स्वराज। स्वराज के मायने समझाते हुए गांधी लिखते हैं , "मेरा यह भी दावा है कि स्वराज के ध्येय से सबको सर्वदा पूरा संतोष मिल सकता है। हम अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी अनजाने में यह मान लेने की भयंकर भूल अक्सर किया करते हैं कि अंग्रेजी बोलने वाले मुट्ठी - भर आदमी ही समूचा हिन्दुस्तान हैं।" आगे गांधी कहते हैं कि "मैं हर किसी को चुनौती देता हूँ कि 'इंडिपेंडेंस' के लिए, वे एक ऐसा सर्व सामान्य भारतीय शब्द बतलाए, जो जनता भी समझती हो। आखिर हमें अपने ध्येय के लिए कोई ऐसा स्वदेशी शब्द तो चाहिए, जिसे तीस करोड़ लोग समझते हों।" गांधी को ऐसा शब्द दिखता है- स्वराज।

बकौल गांधी, स्वराज शब्द का "राष्ट्र के नाम पर पहले- पहल प्रयोग श्री दादाभाई नौरोजी ने किया था। यह शब्द स्वतन्त्रता से काफी कुछ आधिक का द्योतक है। यह एक जीवंत शब्द है। हजारों भारतीयों के आत्म-त्याग से यह शब्द पवित्र बन गया है।" गांधी जिस तरह की आज़ादी चाहते थे,उसे व्यक्त करने के लिहाज से ' स्वतन्त्रता' शब्द तंग था। गांधी की कल्पना के अर्थवृत्त का इज़हार करने में यह शब्द अपर्याप्त था।

गांधी अंग्रेजी हुकूमत से महज राजनीतिक आज़ादी नहीं चाहते थे। उन्हें यह गवारा नहीं कि शासन की पद्धति, सोचने का तरीका और सारा ढाँचा तो बरकरार रहे, फर्क आए तो सिर्फ शासन करने वालो में। राजनीतिक स्वाधीनता हासिल कर, आंग्रेजों की गद्दी पर हिन्दुस्तानी बैठ जाएं और उसी हिसाब से शासन संभालें, जैसे अंग्रेज करते थे; इसे ' स्वराज ' नहीं कहा जा सकता। गांधी को बखूबी अहसास था कि अंग्रेजी शासन के दौरान अंग्रजीयत रच- बस गई है, भारतीय मन-मस्तिष्क में। अंग्रेजी शासक के खिलाफ़ लड़ने वाले लोगों में अंग्रेजीयत के प्रति गहरा मोह था। अंग्रेजीयत ने भारतीय दिल - दिमाग में गहरी पैठ बना ली थी। इससे संघर्ष बेहद कठिन था। राजनीतिक आज़ादी प्राप्ति के बावजूद औपनिवेशिक

शासन के दौरान, पल्लवित - पुष्पित हुए वैचारिक धरातल को, चुनौती नहीं दी जा रही है , बल्कि इसे कायम रखना जरूरी समझा जा रहा है; गांधी यह देख-समझ रहे थे। यह विडंबना गांधी के लिए तकलीफ़देह थी, जिससे आज़ादी हासिल कर भी हिंदुस्तान को हारना था। कहना होगा कि उपनिवेशवाद के दोनों हाथ में लडडू थे। जब तक हिंदुस्तान गुलाम रहेगा, अंग्रेजी शासन के रूप में उपनिवेश की जीत थी। परन्तु स्वतंत्रता - प्राप्ति के पश्चात् उपनिवेश का ख़ात्मा होने पर भी उपनिवेशवाद की हार नहीं होनी थी। ऊपरी तौर पर दिखने वाली हार में भी उसकी भावी जीत निहित थी । भारतीय जनमानस में रच-बस गया था - अंग्रेजी शासन का ढाँचा, सोचने-समझने का तरीका, कायदे - कानून, रंग-गंध, रुचि और सांस्कृतिक संरचना। यानी उपनिवेश हारकर भी जीत रहा था और हिंदुस्तान जीतकर भी हार। ऐसी हालात में हिंदुस्तान का इंग्लिस्तान बनना निश्चित था। यही हिंदुस्तान की सच्ची हार थी।

गांधी की ख़्वाइश थी, राजनीतिक आज़ादी पाने के साथ-साथ हिंदुस्तान की इस हार पर जीत हासिल करना। कारण कि इस हार से निजात पाने के बाद ही शब्द के सच्चे अर्थ में औपनिवेशिक प्रभुत्व समाप्त होता; उसका असर ख़त्म होता। तभी मुमकिन होता गांधी का स्वराज। अलबत्ता गांधी समझ रहे थे कि हिंदुस्तान की जनता स्वाधीनता आंदोलन के जरिए जिस मिशन के लिए संघर्ष कर रही है, गांधी का स्वराज उससे, कई कदम आगे है। हिन्दुस्तानी जनता की मानसिकता उतने कदम आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं दिख रही थी; ' हिन्द स्वराज ' के रचना काल तक तो बिल्कुल नहीं, और हिन्दुस्तानी जनता के इच्छानुसार 'पार्लियामेंट्री ढंग का स्वराज' पाने के लिए सामूहिक प्रयास।

स्वराज प्राप्ति के लिए - गांधी के मुताबिक तो हर काम के लिए - सत्य और अहिंसा की राह पर चलना अपरिहार्य है। कुछेक प्रसंगों में, इन्होंने यह परखने का प्रयास किया है कि सत्य और अहिंसा कितना कारगर है ? नतीजा के तौर पर , गांधी ने पाया है कि यह मार्ग सर्वाधिक कारगर है। गांधी ने अपने साथियों की परीक्षा भी ली है- सत्य और अहिंसा की कसौटी पर ; कि वे कितने खरे साबित होते हैं। दूसरे शब्दों में, अपने समक्ष आई अलग-अलग चुनौतियों के दौरान , गांधी ने सत्य और अहिंसा की परीक्षा ली है और इसकी श्रेष्ठता की तस्दीक की है। साथ ही खुद को व अपने साथियों- कार्यकर्ताओं को जाँचा है कि सत्य और अंहिंसा की राह पर , कब तक और कितनी दूर तलक, जा पाते हैं।

स्वराज पाने के लिए, सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए,' पुरुषार्थ' आवश्यक है। गांधी - विचार - दर्शन में ' पुरुषार्थ ' पुरुष - सत्तात्मक पद नहीं। यह पितृसत्ता का पोषक प्रत्यय भी नहीं है। गांधी इस शब्द का प्रयोग करते थे- बहादुरी के अर्थ में। बड़ा काम के मायने में। बगैर पुरुषार्थ के स्वराज सम्भव नहीं। पुरुषार्थ के साथ-साथ, गांधीजी त्याग पर भी जोर देते थे। गांधी दर्शन, उन की चेतना व उनके चिन्तन में त्याग- वृत्ति का खास स्थान है। गांधी प्रस्तावित करते हैं कि त्याग भी अपने आप में पुरुषार्थ है; बशर्ते त्याग समाज के लिए हो।

सच्चाई और अहिंसा के रास्ते पर, बगैर पुरुषार्थ और त्याग-भावना के, चलना मुश्किल है। सत्य, अहिंसा, पुरूषार्थ और त्याग को मिलाने से हासिल होगा - स्वराज। इन चारों के समुच्चय से प्राप्त होगा- स्वराज।

स्वदेश वापसी के साथ ही गांधीजी ने देश- भ्रमण करना शुरू कर दिया था। अब वे किसी पहचान के मोहताज नहीं थे। उनकी सार्वजनिक शख़्सियत बन चुकी थी। जहाँ जाते, लोगों से मिलते। आज़ादी के लिए चल रही गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करते। लोग भी उनकी बातें बहुत दिलचस्पी के साथ सुनते। गांधी की बातों में लोगों को निर्दोष ईमानदारी महसूस होती थी।

गांधी के सार्वजनिक जीवन में, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में, 1916 में किया गया भाषण बेहद अहम है। इस भाषण में, गांधी के विचार अपने तेज़ के साथ अभिव्यक्त हुए थे। जिन मुद्दों को इन्होंने उठाया, श्रोताओं के दिल छूए थे। मातृभाषा में शिक्षा का सवाल उठाते हुए गांधी ने समझाने का प्रयास किया कि किसी भी भाषा में महान विचार अभिव्यक्त हो सकते हैं। श्रेष्ठ, तार्किक या वैज्ञानिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिहाज से किसी भी भाषा को कमतर मानने- समझने वाली मानसिकता का इन्होंने खंडन किया। मातृभाषा की महत्ता, माध्यम के तौर पर भाषाओं को एक समान समझने की सिफ़ारिश करते हुए, गांधी ने राष्ट्रभाषा का प्रश्न भी उठाया। तत्कालीन शिक्षा की भाषा, शिक्षितों और देश के आवाम के बीच दूरी पैदा कर रही थी। पढ़े- लिखे लोग अपने ही देश में विदेशियों की तरह अजनबी होते जा रहे थे। यह प्रवृत्ति राजनीतिक व सांस्कृतिक तौर पर घातक थी; स्वराज के मार्ग में बाधक भी।

स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय संगठनों के प्रस्ताव पारित करने, कागजी कार्रवाई करने मात्र से स्वराज हासिल नहीं होगा; इस पर जोर देते हुए गांधी ने आचरण पर बल दिया और ठोस कार्यक्रमों के निर्धारण तथा उस पर अमल करना अत्यावश्यक बताया। स्वराज और इसे पाने के लिए चल रहे आंदोलन, अपनी संरचना में महाआख्यान थे; लिहाजा छोटी-छोटी समझे जाने वाली बातों की उपेक्षा हो जाती थी, इसकी विराटता में। गांधी ने इन प्रश्नों को स्वराज प्राप्ति से जोड़ा। मसलन, गंदगी का प्रश्न। बनारस स्थित विश्वनाथ मंदिर के आस-पास की गलियों में गंदगी हो, रेल के डिब्बों या किसी भी सार्वजनिक स्थान की गंदगी हो; गांधी के मुताबिक ये सभी मामले भारतवासियों की मानसिकता और आचरण को उजागर करते थे। इनका रिश्ता स्वराज आंदोलन से बिल्कुल जुदा नहीं था। गंदगी का प्रश्न उठाकर, गांधी ने सफाई को स्वराज प्राप्ति का हथियार बनाया। दरअसल, वे गंदगी फैलाने वाले को श्रेष्ठ और उसे साफ करने वाले को हेय समझने वाले दिलोदिमाग को बदलने का प्रयास कर रहे थे। जो गंदगी फैलाता है, साफ करने की जिम्मेवारी भी उसी की है; न कि किसी और तबके की। भारतीय सामाजिक सरंचना में सफाई को लेकर, व्याप्त भेदभावमूलक मानसिकता से, जद्दोजहद की जरूरत के अहसास से पनपे थे ये विचार।

बनारस के भाषण में, गांधी ने विलासमय जीवन जीने वाले लोगों द्वारा की जाने वाली गरीबी की चर्चा की सीमाओं का उल्लेख किया। कहने वाले की बात का असर तब तक सामने वाले पर नहीं पड़ता, जब तक कि खुद उसे आचरण में नहीं उतारे। जिनके शरीर खुद जेवरात से लदे हों, उनके द्वारा गरीबी की चर्चा, गरीबी और गरीबों का क्रूर मजाक के सिवा क्या है! ऐसी चर्चा बौद्धिक विलास के अलावा कुछ नहीं ! शब्द और कर्म की एकरुपता में यकीन रखने वाले गांधी को यह हरगिज़ स्वीकार नहीं हो सकता था।

गांधी की अगुआई से पहले, भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में आम अवाम की भागीदारी न के बराबर थी। आजादी की लड़ाई में मलाईदार तबके ही सक्रिय थे। यह स्वाधीनता-आंदोलन की एक बड़ी सीमा थी। गांधी ने साफ-साफ शब्दों में कहा कि जिस देश के पचहत्तर प्रतिशत से भी अधिक लोग किसान हैं, उनकी भागीदारी के बगैर आजादी मुमकिन नहीं। वकील, डॉक्टर और सम्पन्न जमींदार ही जब तक स्वाधीनता- आंदोलन से जुड़े रहेंगे, आजादी दूर ही रहेगी। गांधी ने तो यहाँ तक कहा कि यदि हम किसानों के परिश्रम की सारी कमाई दूसरों को उठाकर ले जाने दें तो कैसे कहा जा सकता है कि स्वराज की कोई भी भावना हमारे मन में है। यह इज़हार कर, गांधी एक तरफ, स्वाधीनता-आंदोलन के पाट को विस्तृत और व्यापक करने को जरूरी बता रहे थे। 1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन की चवन्नी सदस्यता का बीज-विचार यहाँ दिखता है। दूसरी तरफ, किसानों का प्रश्न स्वराज - भावना के साथ जोड़कर, इसे स्वाधीनता - आंदोलन का एक अहम सवाल बनाने की वकालत कर रहे थे।

गांधीजी हिंसा करके, अराजकता फैलाकर या किसी भी तरीके से षडयंत्र का सहारा लेकर, स्वाधीनता हासिल करना नहीं चाहते । ऐसा करने वालों के स्वदेश प्रेम के प्रति आदर -भाव रखते हुए भी, वे इसे भीरुता, कायरपन का लक्षण मानते थे। गांधी सभी भारतवासियों को स्वावलम्बी, आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाना चाहते थे और आध्यात्मिक रूप से श्रेष्ठ। उनकी आत्मा से औपनिवेशिक प्रभुत्व के असर को समाप्त करना चाहते थे। हिंसा, अराजकता या षडयंत्र के जरिये यह संभव नहीं था। गांधी ने कहा था कि "कुछ एक बमों और कारतूसों की मदद से स्वराज प्राप्ति का प्रयत्न केवल पागलपन से भरा एक विचार है। इन साधनों से जो स्वराज प्राप्त किया जाएगा, वह देश के गरीब लोगों के लिए नहीं होगा।" सवाल पूछा जा सकता है कि क्या बम और कारतूस से प्राप्त स्वराज देश के गरीबों के लिए भी होता तो क्या वे स्वीकार कर लेते? जवाब होगा-हरगिज नहीं। कारतूस और बम से गांधी को स्पष्ट दिक्कत थी। एक, यह गरीबों को मुक्ति नहीं दे सकता। बगैर स्वावलंबी और आर्थिक रूप से सुदृढ़ हुए, गरीब सच्चे मायने में आजाद नहीं हो पाते। दो, बम के जरिये जो स्वराज आता उसमें हिंसा के लिए जगह निश्चित रूप से रहनी थी। शक्तिशाली लोगों के वर्चस्व की सम्भावना रहनी थी। गांधी जो कल्पना करते थे, जैसा समाज बनाना, सभ्यता निर्मित करना चाहते थे, उसमें हिंसा के लिए जगह नहीं थीं। गांधी तो हिंसा और शोषण पर टिकी पूरी 'शैतानी सभ्यता' का विकल्प रचने की कोशिश कर रहे थे। इसलिए हिंसा की राह को ख़ारिज करना स्वाभाविक था। उन्होंने जोर देकर

कहा, अंग्रेजों के रहते हुए भारत का उद्धार कदापि नहीं हो सकता; बावजूद इसके वे सत्य और अहिंसा की राह पर चलकर ही आज़ादी प्राप्त करना चाहते थे भले ही अपेक्षाकृत देरी से। गांधी का भाषण जहां समापन हुआ, उन्होंने कहा था कि ब्रिटिश-साम्राज्य के इतिहास पर गौर करने से पता चलता है कि यह साम्राज्य चाहे जितना स्वातंत्र्य-प्रेमी हो (ब्रिटिश सत्ता इसका झूठा दावा करती थी), बावजूद इसके स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए स्वयं उद्योग न करने वालो को वह हरगिज स्वतंत्रता देने वाला नहीं है। गांधी ने यह भी कहा कि हिन्दुस्तान को अंग्रेजी से मुक्ति, अपना स्वराज, दान के रूप में कदापि नहीं मिलने वाला; यदि किसी दिन हमें स्वराज मिलेगा तो वह अपने पुरुषार्थ से मिलेगा।

स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व करते हुए गांधी ने भारतीय जनता के पुरुषार्थ को जगाने का सफल प्रयास किया। आम अवाम को निर्भय बनाया। वे चाहते थे कि भारतवासी भयमुक्त होकर स्वाधीनता-आंदोलन में शिरकत करें। अठारह सौ सत्तावन के बाद अंग्रेजी हुकूमत की बर्बरता को हिंदुस्तानियों ने झेला था। लोगों के दिल व दिमाग पर खौफ कायम था। गांधी यह खौफ़ मिटाना चाहते थे। चंपारण सत्याग्रह में इसका सकारात्मक परिणाम सामने आया। ब्रिटिश हुकूमत के कारिंदों की लाल पगड़ी देखकर कांपने वाले किसानों ने, गांधी के प्रभाव से निर्भीक होकर, सिपाहियों के सामने अपना बयान दर्ज कराया। अपने मकसद में सफल भी हुए।

गांधी ने जब असहयोग आंदोलन आरम्भ कर, भारतवासियों से, काउंसिल ,कोर्ट और कॉलेज का बहिष्कार करने की अपील की तो गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर, महामना मदनमोहन मालवीय जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण लोगों ने इससे अपनी असहमति जाहिर की; खासकर विद्यार्थियों से स्कूल-कॉलेज छोड़ने की अपील पर। गांधी का मानना था कि अंग्रेजी शिक्षा को त्यागे बिना मुल्क की आजादी संभव नहीं है। भारतीयों में मौजूद हीनता, पामरता और भ्रम अंग्रेजी शिक्षा का ही प्रताप है। अंग्रेजी शिक्षा गुलाम मानसिकता निर्मित करती है। बकौल गांधीजी, यह कहना सरासर झूठ है कि हमें अंग्रेजी शिक्षा नहीं मिली होती तो इस वक्त हम कोई हलचल न कर रहे होते। कहना होगा कि गांधीजी अंग्रेजी शिक्षा के सिर्फ दुष्प्रभाव को देख रहे थे; उसकी सकारात्मकता का कोई पहलू नहीं। सवाल पूछा जा सकता है कि गांधीजी खुद अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित थे; क्या उनके शख़्सियत-निर्माण में, इसका कोई योगदान नहीं।

गांधी ने जीवन में कई ऐसे फैसले किए,जिससे तत्कालीन कतिपय महत्वपूर्ण लोगों की (जिन्हें गांधी भी आदर करते थे) रजामंदी नहीं थी; परंतु उनके प्रति बगैर किसी कटुता के, गांधी अपनी राह पर डटे रहे। असहयोग आंदोलन गांधी का ऐसा ही एक फैसला था। असहयोग आंदोलन के दौर में ही राष्ट्रीय शिक्षा के लिए विद्यालयों-महाविद्यालयों की स्थापना की आवश्यकता महसूस की गई। परिणामस्वरूप, गुजरात विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, तिलक महाविद्यालय पूना जैसे संस्थानों की स्थापना हुई।

गुजरात महाविद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर, गांधीजी ने शिक्षा संबंधी अपना मत इज़हार किया। राष्ट्रीय शिक्षा के लिए इन्होंने पारंपरिक प्रतिमानों को खारिज़ कर, नया मेयार स्थापित करने की बात कही। अन्य महाविद्यालयों से अलग कसौटी बनाने और उस पर इन राष्ट्रीय महाविद्यालयों को जांचने का प्रस्ताव रखा। गांधी ने कहा कि इनके लिए नयी कसौटी होगी-चरित्र। चरित्र की कसौटी पर, जांचने पर नये महाविद्यालय खरा साबित होंगे। यही इनकी सार्थकता और सफलता है। गांधी का मानना था कि अंग्रेजी राज में भारतीय आत्मा शुष्क हो गई है और देश निस्तेज एवं ज्ञानहीन। आलम यह है कि हमारी आत्मा भी अंग्रेजों के अधीन हो गई है, यह सबसे दुःखद बात है; सबसे बड़ी हार है। इस पराजय से मुक्ति में गांधीजी राष्ट्रीय विद्यालयों की प्रासंगिकता देखते थे और सार्थकता भी।

सा विद्या या विमुक्तये-सूत्र गांधी को पसंद आया था। विद्या का मतलब और मकसद, जो इस सूत्र से जाहिर होता था, पसन्दगी का कारण था। जिससे मुक्ति मिले, वही विद्या है। मुक्ति भी दो तरह की। एक, ऐसी विद्या जो देश को पराधीनता से मुक्त करे। इसी में अंतर्निहित है, भारतीय आत्मा द्वारा स्वीकृत औपनिवेशिक वर्चस्व से मुक्ति। असहयोग-आंदोलन के अलावा भी कुछेक अवसर ऐसे आए, जब गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर और चिंतक आनंद कुमारस्वामी जैसी महान शख्सियतें गांधी से असहमत थीं। आपसी रिश्ते में कड़वाहट पैदा नहीं हुई। मित्रता का माधुर्य कायम रहा। ऐसे संदर्भो के बारे में, यह उल्लेखनीय है कि गांधीजी हर प्रसंग को राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में आँकते थे। उपयोगितावादी नजरिये का ही परिणाम था, कभी-कभार कला और साहित्य के खिलाफ़ रायशुमारी। गांधीजी की ऐसी मान्यताओं से इत्तेफ़ाक रखना संभव नहीं। दो, ऐसी विद्या जो सदा के लिए मुक्ति प्रदान करे। यानी, मोक्ष जिसे परम-धर्म भी कहते हैं। इसे पाने के लिए सांसारिक मुक्ति अनिवार्य है। भय में रहने वाला मनुष्य मोक्ष नहीं पा सकता। इसीलिये गांधीजी ऐसी विद्या को त्याज्य मानते थे, जिससे मुक्ति नहीं मिले। गांधीजी के मुताबिक ऐसी विद्या धर्म विरुद्ध भी है।

गांधी-मार्ग पर चलना, व्रत पालन करना सरीखा है। इसके लिए आत्मा शुद्ध और मनोबल मजबूत होना चाहिए। गांधी ने सत्याग्रहियों और असहयोग करने वालों के लिए कुछ शर्तें बताईं थी। असहयोग आंदोलन के दौर में, उन्होंने कहा था कि जिन्हें ये शर्तें स्वीकार हो, वही इस आंदोलन में हिस्सा लें। शांति को अपने हृदय पर लिखकर रखें। न शांति भंग करें, न किसी को गाली दें, न गुस्सा करें, न किसी को तमाचा मारें और न शर्म-शर्म की आवाज़ लगायें। अगर किसी ने इसका पालन करने में भूल की हो तो उसे अपनी भूल स्वीकार कर, पश्चाताप करना चाहिए। भूल स्वीकारने, पश्चाताप करने और इससे सीख लेने वाले को गांधीजी सच्चा बहादुर मानते थे।

गांधी के स्वराज के राह में बाधा 'शैतानी सभ्यता' के प्रति मोह भाव रखने वाले थे। इससे भी बड़ी बाधा पेश कर रहे थे-प्राचीन संस्कृति के नाम पर, समाज में अस्पृश्यता और देवदासी जैसी घिनौनी प्रथा के

समर्थक। साथ ही मंदिर में पूजा और मस्जिद में इबादत करने वालो के बीच दुश्मनी मानने-फैलाने वाले। गांधी इन दोनों तरह के लोगों कृत्य धर्म विरोधी मानते थे। ऐसे लोगों के खतरनाक रवैये के प्रति सचेत रहने को प्रेरित करते थे। प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार के एक प्रसंग में इन्होंने कहा था कि आप प्राचीन संस्कृति के सभी तत्वों का उपादानों का ही तो पुनरुद्धार करना चाहेंगे, जो उच्चादर्शपूर्ण हैं और जिनका स्थायी महत्व है। आप किसी भी ऐसे उपादान का पुनरुद्धार तो कर ही नहीं सकते, जो इनमें से किसी भी धर्म के विरुद्ध पड़ता हो। यह थी गांधी के संघर्ष के संघर्ष की जमीन। इसी जमीन पर स्वराज का बीज अंकुरित हो सकता था ,पल्लवित और पुष्पित भी हो सकता है।

(**परिचय :** लेखक युवा गांधीवादी चिंतक हैं, वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय के राजधानी कॉलेज में बतौर सहायक प्रोफेसर अध्यापन-कार्य में संलग्न हैं।)